योगसार

अनुक्रमणिका

मंगलाचरण

001) सिद्धों को नमस्कार
001) अरहंत भगवान को नमस्कार
003) ग्रन्थ को कहने का प्रयोजन
003) मिथ्यादर्शन संसार का कारण है
005) मोक्ष-सुख का कारण आत्मध्यान है
005) आत्मा की तीन अवस्थाएँ
007) बहिरात्मा का स्वरूप
007) अन्तरात्मा का स्वरूप
009) परमात्मा का स्वरूप
009) बहिरात्मा का लक्षण
011) भेद-ज्ञान की प्रेरणा
011) आत्म-ज्ञानी ही निर्वाण पाता है
013) इच्छा रहित तप ही निर्वाण का कारण
013) परिणामों से ही बंध व मोक्ष
015) आत्म-ज्ञान शून्य पुण्य कर्म से मोक्ष नहीं
015) आत्म-दर्शन ही मोक्ष का कारण
017) मार्गणा व गुणस्थान आत्मा नहीं
017) गृहस्थी भी मोक्षमार्गी
019) जिनेन्द्र का स्मरण परम पद का कारण है
019) अपनी आत्मा और जिनेन्द्र में भेद नहीं
021) आत्मा ही जिन है, यही सिद्धांत का सार है
021) मैं ही परमात्मा हूँ
023-024) आत्मा निश्चय से असंख्यात-प्रदेशी लोकप्रमाण, व्यवहार से शरीरप्रमाण
023-024) सम्यक्त्व बिना अनन्त संसार में भ्रमण
026-027) शुद्धात्मा का चिंतन ही मोक्षमार्ग
026-027) त्रिलोक-पूज्य जिन शुद्धात्मा ही है
029) आत्मानुभव बिना मिथ्यादृष्टि के व्रत-संयम द्वारा मोक्ष नहीं
029) व्रत-संयम युक्त शुद्धात्मा के ध्यान से सिद्धि
031) अकेला व्यवहार चारित्र वृथा है
031) शुद्धोपयोग में पुण्य-पाप हेय
033) निश्चय चारित्र ही मोक्ष का कारण
033) आपसे आपको ध्याओ
035) व्यवहार में नौ पदार्थों का ज्ञान आवश्यक
035) सारभूत चेतानेवाला एक जीव ही है
037) सर्व व्यवहार को त्यागकर शुद्धात्मा को ध्याओ
037) जीव-अजीव का भेद जानो
039) आत्मा केवलज्ञान स्वाभावी है
039) ज्ञानी को हर जगह आत्मा ही दिखता है
041) अनात्मज्ञानी कुतीर्थों में भ्रमता है
041) निज शरीर रुपी मंदिर में ही निश्चय से देव रहता है
043) देवालय में साक्षात् देव नहीं है
043) समभावरूप चित्त से अपने देह में जिनदेव को देख
045) ज्ञानी ही शरीररुपी मंदिर में परमात्मा को देखता है
045) धर्मामृत के पान से अमरता

047) बाहरी क्रिया में धर्म नहीं
047) राग-द्वेष रहित आत्मस्थ होना ही धर्म
049) आशा तृष्णा ही संसार-भ्रमण का कारण है
049) आत्म-प्रेमी ही निर्वाण का पात्र
051) शरीर को नरक समान जानो
051) जगत के धंधों में मत उलझ
053) शास्त्र पाठ आत्मज्ञान बिना निष्फल है
053) इन्द्रिय और मन को छोड़कर सहज आत्मज्ञान
055) पुद्गल व जगत के व्यवहार से आत्मा को भिन्न जानो
055) आत्मानुभवी ही संसार से मुक्त होता है
057) आत्मा के ज्ञान के लिए नौ दृष्टांत
057) देहादिरूप मैं नहीं -- यही ज्ञान मोक्ष का बीज है
059) आकाश के समान होकर भी मैं सचेतन हूँ
059) अपने भीतर ही मोक्ष-मार्ग है
061) निर्मोही होकर अपने अमूर्तिक आत्मा को देखें
061) आत्मानुभव का फल केवलज्ञान व अविनाशी सुख
063) परभाव का त्याग संसार त्याग का कारण है
063) धन्य हैं वे जिन्होंने समस्त पर-भावों को त्याग दिया
065) गृहस्थ हो या मुनि आत्मा में वास की प्रेरणा
065) तत्त्वश्रद्धानी विरले होते हैं
067) कुटुम्ब मोह त्यागने योग्य है
067) अशरण भावना
069-070) एकत्व भावना
069-070) पुण्य को भी पाप जाने वही ज्ञानी
072) पुण्य और पाप में बन्ध की अपेक्षा समानता
072) भाव से नग्न हो सच्चा मोक्ष-मार्गी
074) इसी देह में त्रिलोक-प्रधान भगवान रहता है
074) आप स्वयं ही जिन है -- यही भावना मोक्ष का उपाय
076) आत्मा को लक्षण द्वारा जान
076) दो को छोड़ दो गुण सहित आत्मा में वास करो
078) तीन को छोड़ तीन गुण सहित आत्मा में वास करो
078) चार को छोड़ चार गुण सहित आत्मा में वास करो
080) पांच-पांच को छोड़ पांच-पांच गुण सहित आत्मा में वास करो
080) आत्मरमण में तप-त्यागादि सब कुछ है
082) पर-भावों का त्याग ही संन्यास है
082) रत्नत्रय धर्म ही उत्तम तीर्थ है
084) रत्नत्रय का स्वरूप
084) आत्मानुभव में सब गुण हैं
086) एकाकी होकर एक आत्मा का ही मनन कर
086) सहज स्वरूप में रमण कर
088) सम्यग्दृष्टि सुगति पाता है
088) सर्व व्यवहार छोड़कर आत्मा में रमण ही सम्यग्दर्शन
090) सम्यक्त्वी ही पंडित व प्रधान है
090) आत्मा में स्थिरता संवर व निर्जरा का कारण है
092) अलिप्त भाव ही कर्मों से अलिप्तता का कारण
092) सम-सुख भोगी निर्वाण का पात्र है
094) आत्मा को पुरुषाकार पवित्र गुणों की खान जानो
094) जो आत्मा को जानता है वह सब शास्त्रों का ज्ञाता होता है
096) भेद-विज्ञान ही कार्यकारी है
096) परम समाधि शिव-सुख का कारण है
098) आत्म-ध्यान चार प्रकार का
098) सामायिक चारित्र कथन
101) छेदोपस्थापना चारित्र कथन

101) परिहार-विशुद्धि चारित्र कथन
103) यथाख्यात चारित्र कथन
103) शुद्धात्मा के कई नाम
106) परमात्मा अपनी ही देह में स्थित है
106) आत्म-दर्शन ही सिद्ध होने का उपाय
108) ग्रंथकर्त्ता की अंतिम भावना

!! श्रीसर्वज्ञवीतरागाय नम: !!

श्रीमद्-भगवत्योगींदुदेव-प्रणीत

श्री

योगसार

मूल अपभ्रंश गाथा

आभार :

!! नम: श्रीसर्वज्ञवीतरागाय !!

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नम: ॥1॥
अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका
मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥2॥
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नम: ॥3॥

अर्थ : बिन्दुसहित ॐकार को योगीजन सर्वदा ध्याते हैं, मनोवाँछित वस्तु को देने वाले और मोक्ष को देने वाले ॐकार को बार बार नमस्कार हो । निरंतर दिव्य-ध्वनि-रूपी मेघ-समूह संसार के समस्त पापरूपी मैल को धोनेवाली है मुनियों द्वारा उपासित भवसागर से तिरानेवाली ऐसी जिनवाणी हमारे पापों को नष्ट करो । जिसने अज्ञान-रूपी अंधेरे से अंधे हुये जीवों के नेत्र ज्ञानरूपी अंजन की सलाई से खोल दिये हैं, उस श्री गुरु को नमस्कार हो । परम गुरु को नमस्कार हो, परम्परागत आचार्य गुरु को नमस्कार हो ।

॥ श्रीपरमगुरुवे नम:, परम्पराचार्यगुरुवे नम: ॥

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमन: प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री-योगसार नामधेयं, अस्य मूल-ग्रन्थकर्तार: श्री-सर्वज्ञ-देवास्तदुत्तर-ग्रन्थ-कर्तार: श्री-गणधर-देवा: प्रति-गणधर-देवास्तेषां वचनानुसार-मासाद्य आचार्य श्री-योगींदु-देव विरचितं ॥

(समस्त पापों का नाश करनेवाला, कल्याणों का बढ़ानेवाला, धर्म से सम्बन्ध रखनेवाला, भव्यजीवों के मन को प्रतिबुद्ध-सचेत करनेवाला यह शास्त्र योगसार नाम का है, मूल-ग्रन्थ के रचयिता सर्वज्ञ-देव हैं, उनके बाद ग्रन्थ को गूंथनेवाले गणधर-देव हैं, प्रति-गणधर देव हैं उनके वचनों के अनुसार लेकर आचार्य श्रीयोगींदुदेव द्वारा रचित यह ग्रन्थ है । सभी श्रोता पूर्ण सावधानी पूर्वक सुनें ।)

॥ श्रोतार: सावधानतया शृणवन्तु ॥

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

सिद्धों को नमस्कार

णिम्मल-झाण-परिट्ठिया, कम्म-कलंक डहेवि
अप्पा लद्धउ जेण परु, ते परमप्प णवेवि ॥1॥
सब कर्ममल का नाश कर अर प्राप्त कर निज-आतमा
जो लीन निर्मल ध्यान में नम कर निकल परमातमा ॥

अन्वयार्थ : [जेण] जिन्होंने [णिम्मल-झाण-परिट्ठिया] निर्मल ध्यान में स्थित होकर [कम्म-कलंक डहेवि] कर्मरूपी कलंक को जलाकर [परु अप्पा लद्धउ] परमात्म पद को प्राप्त कर लिया है, [ते परमप्प णवेवि] उन परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ ।

अरहंत भगवान को नमस्कार

घाइ-चउक्कह किउ विलउ, अणंत-चउक्क-पदिट्ठु
तहिं जिणइंदहँ पय णविवि, अक्खमि कव्वु सुइट्ठु ॥2॥
सब नाश कर घनघाति अरि अरिहंत पद को पा लिया
कर नमन उन जिनदेव को यह काव्यपथ अपना लिया ॥

अन्वयार्थ : [घाइ-चउक्कह किउ विलउ] चार घातिया कर्मों का नाश करके [अणंत-चउक्क-पदिट्ठु] अनन्त चतुष्टय को प्रकट किया है, [तहिं जिणइंदहँ पय] उन जिनेन्द्र देव के चरणों को [णविवि] नमस्कार करके [कव्वु सुइट्ठु] अत्यन्त इष्ट काव्य को [अक्खमि] कहता हूँ ।

ग्रन्थ को कहने का प्रयोजन

संसारहं भयभीयाहं, मोक्खह लालसियाहं
अप्पा-संबोहण-कयइ, कय दोहा एक्कमणाहं ॥3॥
है मोक्ष की अभिलाष अर भयभीत हैं संसार से
है समर्पित यह देशना उन भव्य जीवों के लिए ॥

अन्वयार्थ : [संसारहं भयभीयाहं] संसार से भयभीत और [मोक्खह लालसियाहं] मोक्ष की कामना रखने वालों के लिए, [अप्पासंबोहणकयइ] आत्मा का स्वरूप समझाने के लिए मैंने [एक्कमणाहं] एकाग्रचित्त से [कय दोहा] दोहों की रचना की है ।

मिथ्यादर्शन संसार का कारण है

कालु अणाइ अणाइ जिउ, भव-सायरु जि अणंतु
मिच्छा-दंसण-मोहियउ, णवि सुह दुक्ख जि पत्तु ॥4॥
अनन्त है संसार-सागर जीव काल अनादि हैं
पर सुख नहीं, बस दुःख पाया मोह-मोहित जीव ने ॥

अन्वयार्थ : [कालु अणाइ] काल अनादि-अनन्त है, [अणाइ जिउ] जीव अनादि-अनन्त है और यह [भव-सायरु जि अणंतु] संसारसागर भी अनादि-अनन्त है । यहाँ [मिच्छा-दंसण-मोहियउ] मिथ्यादर्शन से मोहित जीव ने [णवि सुह] सुख नहीं [दुक्ख जि पत्तु] दुःख ही पाया ।

मोक्ष-सुख का कारण आत्मध्यान है

जइ बीहउ चउ-गइ-गमणु, तउ परभाव चएवि
अप्पा झायहि णिम्मलउ, जिम सिव-सुक्ख लहेवि ॥5॥
भयभीत है यदि चर्तुगति से त्याग दे परभाव को
परमातमा का ध्यान कर तो परमसुख को प्राप्त हो ॥

अन्वयार्थ : [जइ बीहउ चउ-गइ-गमणु] यदि चतुर्गति के भ्रमण से भयभीत है, [तउ परभाव चएवि] तो परभाव का त्याग कर और [अप्पा झायहि णिम्मलउ] निर्मल आत्मा का ध्यान कर, [जिम सिव-सुक्ख लहेवि] ताकि मोक्ष-सुख को प्राप्त कर सके ।

आत्मा की तीन अवस्थाएँ

तिपयारो अप्पा मुणहि, परु अंतरु बहिरप्पु
पर झायहि अंतर-सहिउ, बाहिरु चयहि णिभंतु ॥6॥
बहिरातमापन त्याग जो बन जाय अन्तर-आतमा
ध्यावे सदा परमातमा बन जाय वह परमातमा ॥

अन्वयार्थ : [तिपयारो अप्पा मुणहि] आत्मा को तीन प्रकार जानो - [परु अंतरु बहिरप्पु] परमात्मा, अन्तरात्मा और बहिरात्मा । [अंतर-

सहिउ] अन्तरात्मा होकर [पर झायहि] परमात्मा का ध्यान करो और [णिभंतु] भ्रान्ति-रहित होकर [बाहिरु चयहि] बहिरात्मा का त्याग कर दो ।

बहिरात्मा का स्वरूप

मिच्छा-दंसण-मोहियउ, परु अप्पा ण मुणेइ
सो बहिरप्पा जिण-भणिउ, पुण संसार भमेइ ॥7॥
मिथ्यात्वमोहित जीव जो वह स्व-पर को नहिं जानता
संसार-सागर में भ्रमे दृगमूढ़ वह बहिरातमा ॥
अन्वयार्थ : [मिच्छा-दंसण-मोहियउ] मिथ्यादर्शन से मोहित [परु अप्पा ण मुणेइ] परमात्मा (अथवा स्व और पर) को नहीं पहिचानता है, [सो बहिरप्पा जिण-भणिउ] उसे जिनेन्द्र देव ने बहिरात्मा कहा है । [पुण संसार भमेइ] वह पुनः पुनः संसार में परिभ्रमण करता है ।

अन्तरात्मा का स्वरूप

जो परियाणइ अप्पु परु, जो परभाव चएइ
सो पंडिउ अप्पा मुणहिं, सो संसारु मुएइ ॥8॥
जो त्यागता परभाव को अर स्व-पर को पहिचानता
है वही पण्डित आत्मज्ञानी स्व-पर को जो जानता ॥
अन्वयार्थ : [जो परियाणइ अप्पु परु] जो जीव स्व-पर को पहचानकर, [जो परभाव चएइ] परभावों का त्याग कर देता है, [सो पंडिउ] वह पंडित है [अप्पा मुणहिं] आत्मा को जानता है । [सो संसारु मुएइ] वह संसार को छोड़ देता है ।

परमात्मा का स्वरूप

णिम्मलु णिक्कलु सुद्धु जिणु, विण्हु बुद्धु सिवु संतु
सो परमप्पा जिण-भणिउ, एहउ जाणि णिभंतु ॥9॥
जो शुद्ध शिव जिन बुद्ध विष्णु निकल निर्मल शान्त है
बस है वही परमातमा जिनवर-कथन निर्भ्रान्त है ॥
अन्वयार्थ : जो [णिम्मलु] (कर्म-मल व रागादि रहित होने से) निर्मल है, [णिक्कलु] (शरीर रहित होने से) निष्कल है, [सुद्धु] शुद्ध है, [जिणु] (अपने सर्व शत्रुओं को जीतने से) जिन है, [विण्हु] (सर्वज्ञ होने से) विष्णु है, [बुद्धु] (स्व-पर को जानने से) बुद्ध है, [सिवु] (परम-कल्याणकारी होने से) शिव है और [संतु] (वीतराग होने से) शान्त है [सो परमप्पा जिण-भणिउ] उसे जिनेन्द्रदेव ने परमात्मा कहा है - [एहउ जाणि णिभंतु] ऐसा निःसन्देह जानो ।

बहिरात्मा का लक्षण

देहादिउ जे पर कहिय, ते अप्पाणु मुणेइ
सो बहिरप्पा जिण-भणिउ, पुणु संसार भमेइ ॥10॥
जिनवर कहे देहादि पर जो उन्हें ही निज मानता
संसार-सागर में भ्रमे वह आतमा बहिरातमा ॥
अन्वयार्थ : [देहादिउ जे पर कहिया] देह आदि जो कि पर कहे गये हैं, [ते अप्पाणु मुणेइ] उनको आत्मा समझता है, [सो बहिरप्पा जिण-भणिउ] उसे जिनेन्द्र देव ने बहिरात्मा कहा है, [पुणु संसार भमेइ] वह संसार में पुनः पुनः परिभ्रमण करता है ।

भेद-ज्ञान की प्रेरणा

देहादिउ जे पर कहिया, ते अप्पाणु ण होहिं

इउ जाणेविणु जीव तुहूँ, अप्पा अप्प मुणेहिं ॥11॥
देहादि पर जिनवर कहें ना हो सकें वे आतमा
यह जानकर तू मान ले निज आतमा को आतमा ॥

अन्वयार्थ : [देहादिउ जे पर कहिया] देह आदि पदार्थ जो कि पर कहे गये हैं [ते अप्पाणु ण होहिं] वे आत्मा नहीं हो सकते [इउ जाणेविणु जीव तुहूँ] ऐसा जानकर तू [अप्पा अप्प मुणेहिं] अपने को आत्मा जान ।

आत्म-ज्ञानी ही निर्वाण पाता है

अप्पा अप्पउ जइ मुणहि, तो णिव्वाणु लहेहि
पर अप्पा जउ मुणिहि तुहुँ, तहु संसार भमेहि ॥12॥
तू पायगा निर्वाण माने आतमा को आतमा
पर भवभ्रमण हो यदी जाने देह को ही आतमा ॥

अन्वयार्थ : [अप्पा अप्पउ जइ मुणहि] आत्मा को ही आत्मा समझेगा [तो णिव्वाणु लहेहि] तो निर्वाण प्राप्त करेगा और [पर अप्पा जउ मुणिहि] यदि पर को आत्मा मानेगा [तुहुँ तहु संसार भमेहि] तो तू संसार में परिभ्रमण करेगा ।

इच्छा रहित तप ही निर्वाण का कारण

इच्छारहिउ तव करहि, अप्पा अप्प मुणेहि
तउ लहु पावहि परमगई, पुण संसार ण एहि ॥13॥
आतमा को जानकर इच्छारहित यदि तप करे
तो परमगति को प्राप्त हो संसार में घूमे नहीं ॥

अन्वयार्थ : [इच्छारहिउ तव करहि] इच्छा-रहित होकर तप करे और [अप्पा अप्प मुणेहि] आत्मा को ही आत्मा समझे, [तउ लहु पावहि परमगई] तो शीघ्र ही परमगति को प्राप्त कर ले और [पुण संसार ण एहि] निश्चित रूप से पुनः संसार में न आवे ।

परिणामों से ही बंध व मोक्ष

परिणामे बंधुजि कहिउ, मोक्ख वि तह जि वियाणि
इउ जाणेविणु जीव तुहुँ, तहभावहु परियाणि ॥14॥
परिणाम से ही बंध है अर मोक्ष भी परिणाम से
यह जानकर हे भव्यजन ! परिणाम को पहिचानिये ॥

अन्वयार्थ : [परिणामे बंधुजि कहिउ] परिणाम से ही बंध कहा है और [मोक्ख वि तह जि वियाणि] वैसे ही मोक्ष भी (परिणाम से ही) कहा है, [इउ जाणेविणु जीव] हे जीव ! ऐसा समझकर [तुहुँ तहभावहु परियाणि] तू उन भावों की पहिचान कर ।

आत्म-ज्ञान शून्य पुण्य कर्म से मोक्ष नहीं

अह पुणु अप्पा णवि मुणहि, पुण्णु वि करइ असेसु
तउ वि णु पावइ सिद्धसुहु, पुणु संसार भमेसु ॥15॥
निज आतमा जाने नहीं अर पुण्य ही करता रहे
तो सिद्धसुख पावे नहीं संसार में फिरता रहे ॥

अन्वयार्थ : [अह पुणु अप्पा णवि मुणहि] यदि तू आत्मा को नहीं जानेगा और [पुण्णु वि करइ असेसु] केवल पुण्य ही करता रहेगा [तउ वि णु पावइ सिद्धसुहु] तो भी सिद्धसुख को नहीं पा सकेगा, [पुणु संसार भमेसु] पुनः पुनः संसार में ही भ्रमण करेगा ।

आत्म-दर्शन ही मोक्ष का कारण

अप्पादंसण इक्क परु, अण्णु ण किं पि वियाणि
मोक्खह कारण जोइया, णिच्छह एहउ जाणि ॥16॥
निज आतमा को जानना ही एक मुक्तिमार्ग है
कोइ अन्य कारण है नहीं हे योगिजन! पहिचान लो ॥

अन्वयार्थ : [अप्पादंसण इक्क परु] एक आत्मदर्शन को छोड़कर [मोक्खह कारण] मोक्ष का कारण [अण्णु ण किं पि वियाणि] अन्य किसी को भी नहीं जान - [जोइया] हे योगी ! [णिच्छह एहउ जाणि] ऐसा तू निश्चित रूप से जान ।

मार्गणा व गुणस्थान आत्मा नहीं

मग्गण-गुणठाणइ कहिया, ववहारेण वि दिट्ठि
णिच्छइणइ अप्पा मुणहु, जिय पावहु परमेट्ठि ॥17॥
मार्गणा गुणथान का सब कथन है व्यवहार से
यदि चाहते परमेष्ठिपद तो आतमा को जान लो ॥

अन्वयार्थ : [मग्गण-गुणठाणइ कहिया] मार्गणास्थान और गुणस्थान का कथन [ववहारेण वि दिट्ठि] व्यवहार दृष्टि से ही है, [णिच्छइणइ अप्पा मुणहु] निश्चयनय से आत्मा को पहिचान, [जिय पावहु परमेट्ठि] जिससे परमेष्ठी पद प्राप्त हो ।

गृहस्थी भी मोक्षमार्गी

गिहि-वावार परट्ठिआ, हेयाहेउ मुणंति
अणुदिणु झायहि देउ जिणु, लहु णिव्वाणु लहंति ॥18॥
घर में रहें जो किन्तु हेयाहेय को पहिचानते
वे शीघ्र पावें मुक्तिपद, जिनदेव को जो ध्यावते ॥

अन्वयार्थ : जो [गिहि-वावार परट्ठिआ] गृह-व्यापार में लगे हुए हैं, [हेयाहेउ मुणंति] हेय-उपादेय को पहिचानते हैं, [अणुदिणु झायहि देउ जिणु] रातदिन जिनदेव का ध्यान करते हैं, [लहु णिव्वाणु लहंति] वे शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं ।

जिनेन्द्र का स्मरण परम पद का कारण है

जिण सुमिरहु जिण चिंतवहु, जिण झायहु सुमणेण
सो झाहंतह परमपउ, लब्भइ एक्क-खणेण ॥19॥
तुम करो चिन्तन स्मरण अर ध्यान आतमदेव का
बस एक क्षण में परमपद की प्राप्ति हो इस कार्य से ॥

अन्वयार्थ : [सुमणेण] शुद्ध मन से [जिण सुमिरहु] जिनदेव का स्मरण करो, [जिण चिंतवहु] जिनदेव का ही चिन्तन करो और [जिण झायहु] जिनदेव का ही ध्यान करो, [सो झाहंतह] ऐसे ध्यान से [परमपउ, लब्भइ एक्क-खणेण] एक क्षण में परमपद प्राप्त होता है ।

अपनी आत्मा और जिनेन्द्र में भेद नहीं

सुद्धप्पा अरु जिणवरहँ, भेउ म किमपि वियाणि
मोक्खह कारण जोइया, णिच्छइ एउ वियाणि ॥20॥
मोक्षमग में योगिजन यह बात निश्चय जानिये
जिनदेव अर शुद्धातमा में भेद कुछ भी है नहीं ॥

अन्वयार्थ : [सुद्धप्पा अरु जिणवरहँ] शुद्धात्मा और जिनवर में [भेउ म किमपि वियाणि] कुछ भी अन्तर मत जान; [मोक्खह कारण] मोक्ष का कारण [जोइया] हे योगी ! [णिच्छइ एउ वियाणि] यही निश्चित रूप से समझो ।

आत्मा ही जिन है, यही सिद्धांत का सार है

जो जिणु सो अप्पा मुणहु, इह सिद्धंतहु सारु
इउ जाणेविण जोयइहु, छंडहु मायाचारु ॥21॥
सिद्धान्त का यह सार माया छोड़ योगी जान लो
जिनदेव अर शुद्धातमा में कोई अन्तर है नहीं ॥

अन्वयार्थ : [जो जिणु सो अप्पा मुणहु] जो जिन है वही आत्मा है, [इह सिद्धंतहु सारु] यही सम्पूर्ण सिद्धान्तों का सार है [छंडहु मायाचारु] सर्व मायाचार को छोड़कर [जोयइहु] हे योगी ! [इउ जाणेविण] इसे जान ।

मैं ही परमात्मा हूँ

जो परमप्पा सो जि हउँ, जो हउँ सो परमप्पु
इउ जाणेविणु जोइया, अण्णु म करहु वियप्पु ॥22॥
है आतमा परमातमा परमातमा ही आतमा
हे योगिजन ! यह जानकर कोई विकल्प करो नहीं ॥

अन्वयार्थ : [जो परमप्पा सो जि हउँ] जो परमात्मा है वही मैं हूँ और [जो हउँ सो परमप्पु] जो मैं हूँ वही परमात्मा है - [इउ जाणेविणु जोइया] ऐसा जानकर हे योगी ! [अण्णु म करहु वियप्पु] अन्य कुछ भी विकल्प मत करो ।

आत्मा निश्चय से असंख्यात-प्रदेशी लोकप्रमाण, व्यवहार से शरीरप्रमाण

सुद्ध-पएसह पूरियउ, लोयायास-पमाणु
सो अप्पा अणुदिण मुणहु, पावहु लहु णिव्वाणु ॥23॥
णिच्छइ लोयपमाण मुणि, ववहारेइ सुसरीरु
एहउ अप्पसहाउ मुणि, लहु पावहु भवतीरु ॥24॥
व्यवहार देहप्रमाण अर परमार्थ लोकप्रमाण है
जो जानते इस भाँति वे निर्वाण पावें शीघ्र ही ॥
परिमाण लोकाकाश के जिसके प्रदेश असंख्य हैं
बस उसे जाने आतमा निर्वाण पावे शीघ्र ही ॥

अन्वयार्थ : [सुद्ध-पएसह पूरियउ] शुद्ध-प्रदेशों से परिपूर्ण, [लोयायास-पमाणु] लोकाकाश-प्रमाण, [सो अप्पा अणुदिण मुणहु] ऐसी आत्मा की नित्य श्रद्धा करो, [पावहु लहु णिव्वाणु] ताकि शीघ्र निर्वाण प्राप्त हो ।

[णिच्छइ लोयपमाण मुणि] निश्चय से लोकाकाश-प्रमाण जानो और [ववहारेइ सुसरीरु] व्यवहार से स्व-शरीर-प्रमाण [एहउ अप्पसहाउ] ऐसे अपने आत्मा के स्वभाव का मनन करते हुए [लहु पावहु भवतीरु] शीघ्र संसार-सागर का किनारा प्राप्त हो ।

सम्यक्त्व बिना अनन्त संसार में भ्रमण

चउरासी लक्खह फिरिउ, काल अणाइ अणंतु
पर सम्मत्त ण लद्धु जिउ, एहउ जाणि णिभंतु ॥25॥
योनि लाख चुरासि में बीता अनन्ता काल है
पाया नहीं सम्यक्त्व फिर भी बात यह निर्भ्रान्त है ॥

अन्वयार्थ : [चउरासी लक्खह फिरिउ] चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण [काल अणाइ अणंतु] अनादि-अनन्त काल से किया [पर सम्मत्त ण लद्धु जिउ] परन्तु इस जीव ने कभी सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं किया [एहउ जाणि णिभंतु] ऐसा निश्चित समझो ।

शुद्धात्मा का चिंतन ही मोक्षमार्ग

सुद्धु सच्चेयणु बुद्धु जिणु, केवलणाण-सहाउ
सो अप्पा अणुदिणु मुणहु, जइ चाहहु सिवलाहु ॥26॥
जाम ण भावहु जीव तुहुँ, णिम्मल अप्प-सहाउ
ताम ण लब्भइ सिवगमणु, जहिँ भावहु तहिँ जाउ ॥27॥
जबतक न भावे जीव निर्मल आतमा की भावना
तबतक न पावे मुक्ति यह लख करो वह जो भावना ॥
यदि चाहते हो मुक्त होना चेतनामय शुद्ध जिन
अर बुद्ध केवलज्ञानमय निज आतमा को जान लो ॥

अन्वयार्थ : [सुद्धु] शुद्ध, [सच्चेयणु] सचेतन, [बुद्धु] बुद्ध, [जिणु] जिन, [केवलणाण-सहाउ] केवलज्ञान स्वभावी [सो अप्पा अणुदिणु मुणहु] ऐसे आत्मा का नित्य चिंतन करो [जइ चाहहु सिवलाहु] यदि मोक्ष-लाभ चाहते हो तो ।
हे जीव ! [जाम] जब तक [णिम्मल अप्प-सहाउ] निर्मल आत्मस्वभाव की [ण भावहु तुहुँ] तू भावना नहीं करेगा, [ताम ण लब्भइ सिवगमणु] तब तक मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता [जहिँ भावहु तहिँ जाउ] जहाँ इच्छा हो, वहाँ जा ।

त्रिलोक-पूज्य जिन शुद्धात्मा ही है

जो तइलोयहँ झेउ जिणु, सो अप्पा णिरु वुत्तु
णिच्छयणइ एमइ भणिउ, एहउ जाणि णिभंतु ॥28॥
त्रैलोक्य के जो ध्येय वे जिनदेव ही हैं आतमा
परमार्थ का यह कथन है निर्भ्रान्त यह तुम जान लो ॥

अन्वयार्थ : [जो तइलोयहँ झेउ जिणु] जो तीन लोक का ध्येय है, जिन है, [सो अप्पा णिरु वुत्तु] वह यह राग-द्वेष रहित आत्मा ही है [णिच्छयणइ एमइ भणिउ] निश्चयनय ऐसा ही कहता है [एहउ जाणि णिभंतु] इसको निसंदेह जान ।

आत्मानुभव बिना मिथ्यादृष्टि के व्रत-संयम द्वारा मोक्ष नहीं

वय-तव-संजम-मूलगुण, मूढह मोक्ख णिवुत्तु
जाव ण जाणइ इक्क परु, सुद्धउ-भाउ-पवित्तु ॥29॥
जबतक न जाने जीव परमपवित्र केवल आतमा
तबतक न व्रत तप शील संयम मुक्ति के कारण कहे ॥

अन्वयार्थ : [जाव] जब तक [इक्क परु, सुद्धउ-भाउ-पवित्तु] एकमात्र परमशुद्ध पवित्र भाव को [ण जाणइ] नहीं जानता ऐसा [मूढह] मिथ्यादृष्टि [वय-तव-संजम-मूलगुण] व्रत, तप, संयम और मूलगुण होते हुए भी [मोक्ख णिवुत्तु] मोक्ष से निवृत्त है ।

व्रत-संयम युक्त शुद्धात्मा के ध्यान से सिद्धि

जइ णिम्मल अप्पा मुणइ, वय-संजमु-संजुत्तु
तो लहु पावइ सिद्धि-सुहु, इउ जिणणाहह वुत्तु ॥30॥
जिनदेव का है कथन यह व्रत शील से संयुक्त हो
जो आतमा को जानता वह सिद्धसुख को प्राप्त हो ॥

अन्वयार्थ : [वय-संजमु-संजुत्तु] व्रत-संयम से युक्त होकर [जइ णिम्मल अप्पा मुणइ] यदि निर्मल आत्मा को ध्याता है [तो लहु पावइ सिद्धि-सुहु] तो शीघ्र ही सिद्धिसुख को पाता है [इउ जिणणाहह वुत्तु] ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है ।

अकेला व्यवहार चारित्र वृथा है

वयतव-संजमु-सीलु जिय, ए सव्वे अकइच्छु
जाव ण जाणइ इक्क परु, सुद्धउ भाउ पवित्तु ॥31॥
जबतक न जाने जीव परमपवित्र केवल आतमा
तबतक सभी व्रत शील संयम कार्यकारी हों नहीं ॥

अन्वयार्थ : [जाव] जब तक [जिय] यह जीव [इक्क परु सुद्धउ भाउ पवित्तु] एक परमशुद्ध पवित्र भाव को [ण जाणइ] नहीं जानता, [वयतव-संजमु-सीलु] व्रत, तप, संयम और शील [ए सव्वे अकइच्छु] ये कुछ भी कार्यकारी नहीं होते ।

शुद्धोपयोग में पुण्य-पाप हेय

पुण्णिं पावइ सग्ग जिउ, पावइ णरय-णिवासु
वे छंडिवि अप्पा मुणइ, तउ लब्भइ सिववासु ॥32॥
पुण्य से हो स्वर्ग नर्क निवास होवे पाप से
पर मुक्ति-रमणी प्राप्त होती आत्मा के ध्यान से ॥

अन्वयार्थ : [पुण्णिं पावइ सग्ग जिउ] पुण्य से जीव स्वर्ग पाता है और [पावइ णरय-णिवासु] पाप से नरक, [वे छंडिवि अप्पा मुणइ] दोनों को छोड़कर आत्मा को जाने [तउ लब्भइ सिववासु] तो मोक्ष प्राप्त करता है ।

निश्चय चारित्र ही मोक्ष का कारण

वउ-तउ-संजमु-सील जिय, इय सव्वइ ववहारु
मोक्खह कारण एक्कु मुणि, जो तइलोयहु सारु ॥33॥
व्रत शील संयम तप सभी हैं मुक्तिमग व्यवहार से
त्रैलोक्य में जो सार है वह आतमा परमार्थ से ॥

अन्वयार्थ : [वउ-तउ-संजमु-सील] व्रत, तप, संयम एवं शील [जिय] हे जीव ! [इय सव्वइ ववहारु] यह तो सब व्यवहार है [मोक्खह कारण एक्क मुणि] मोक्ष का कारण एक (आत्मा) को जान [जो तइलोयहु सारु] जो तीन लोक का सार है ।

आपसे आपको ध्याओ

अप्पा अप्पइ जो मुणइ, जो परभाव चएइ
सो पावइ सिवपुरि-गमणु, जिणवर एउ भणेइ ॥34॥
परभाव को परित्याग कर अपनत्व आतम में करे
जिनदेव ने ऐसा कहा शिवपुर गमन वह नर करे ॥

अन्वयार्थ : [अप्पा अप्पइ जो मुणइ] आत्मा से आत्मा को जानता हुआ [जो परभाव चएइ] जो परभाव को छोड़ देता है, [सो पावइ सिवपुरि-गमणु] वह शिवपुर को जाता है [जिणवर एउ भणेइ] ऐसा जिनेन्द्र देव कहते हैं ।

व्यवहार में नौ पदार्थों का ज्ञान आवश्यक

छह दव्वह जे जिण-कहिआ, णव पयत्थ जे तत्त
ववहारे जिणउत्तिया, ते जाणियहि पयत्त ॥35॥
व्यवहार से जिनदेव ने छह द्रव्य तत्त्वारथ कहे
हे भव्यजन ! तुम विधीपूर्वक उन्हें भी पहिचान लो ॥

अन्वयार्थ : [छह दव्वह जे जिण-कहिआ] जिनेन्द्र देव कथित छह द्रव्य, [णव पयत्थ जे तत्त] सात तत्त्व और नौ पदार्थ, [ववहारे

जिणउत्तिया] व्यवहारनय से जिनदेव ने कहे हैं [ते जाणियहि पयत्त] उनको प्रयत्न करके जानो ।

सारभूत चेतानेवाला एक जीव ही है

सव्व अचेयण जाणि जिय, एक्क सचेयणु सारु
जो जाणेविणु परम-मुणि, लहु पावइ भवपारु ॥36॥
है आतमा बस एक चेतन आतमा ही सार है
बस और सब हैं अचेतन यह जान मुनिजन शिव लहैं ॥

अन्वयार्थ : [जिय] हे जीव [सव्व अचेयण जाणि] सर्व पदार्थों को अचेतन जानो [एक्क सचेयणु सारु] मात्र एक जीव ही सचेतन और सारभूत है [जो जाणेविणु परम-मुणि] जिसे जानकर परममुनि [लहु पावइ भवपारु] शीघ्र संसार-सागर से पार हो जाते हैं ।

सर्व व्यवहार को त्यागकर शुद्धात्मा को ध्याओ

जइ णिम्मलु अप्पा मुणहि, छंडिवि सहु ववहारु
जिण-सामिउ एमइ भणइ, लहु पावहु भवपारु ॥37॥
जिनदेव ने ऐसा कहा निज आतमा को जान लो
यदि छोड़कर व्यवहार सब तो शीघ्र ही भवपार हो ॥

अन्वयार्थ : [छंडिवि सहु ववहारु] सर्व व्यवहार को छोड़कर [जइ णिम्मलु अप्पा मुणहि] यदि निर्मल आत्मा को ध्यावे तो [जिण-सामिउ एमइ भणइ] जिनस्वामी कहते हैं कि [लहु पावहु भवपारु] शीघ्र संसार से पार हो जाए ।

जीव-अजीव का भेद जानो

जीवाजीवहँ भेउ, जो जाणइ तिं जाणियउ
मोक्खहँ कारण एउ, भणइ जोइ जोइहिँ भणिउ ॥38॥
जो जीव और अजीव के गुणभेद को पहिचानता
है वही ज्ञानी जीव वह ही मोक्ष का कारण कहा ॥

अन्वयार्थ : [जीवाजीवहँ भेउ] जीव और अजीव के भेद को [जो जाणइ तिं जाणियउ] जो जानता है, वही वास्तव में सब कुछ जानता है, [मोक्खहँ कारण एउ भणइ] मोक्ष का कारण इसी को कहा है [जोइ] हे योगी ! [जोइहिँ भणिउ] ऐसा योगियों ने कहा है ।

आत्मा केवलज्ञान स्वाभावी है

केवल-णाण-सहाउ, सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ
जइ चाहहि सिव-लाहु, भणइ जोइ जोइहिँ भणिउँ ॥39॥
यदि चाहते हो मोक्षसुख तो योगियों का कथन यह
हे जीव! केवलज्ञानमय निज आतमा को जान लो ॥

अन्वयार्थ : [जइ चाहहि सिव-लाहु भणइ] यदि कहे हुए मोक्ष-सुख को चाहता है तो [केवल-णाण-सहाउ] केवलज्ञान-स्वभावी [सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ] ऐसा तू आत्मा को जान, [जोइ जोइहिँ भणिउँ] हे योगी ! ऐसा योगियों ने कहा है ।

ज्ञानी को हर जगह आत्मा ही दिखता है

को सुसमाहि करउ को अंचउ, छोपु-अछोपु करिवि को वंचउ
हल सहि कलहु केण समाणउ, जहिँ कहिँ जोवउ तहिँ अप्पाणउ ॥40॥
सुसमाधि अर्चन मित्रता अर कलह एवं वंचना
हम करें किसके साथ किसकी हैं सभी जब आतमा ॥

अन्वयार्थ : [को सुसमाहि करउ] कौन समाधि करे? [को अंचउ] कौन पूजन करे? [छोपु-अछोपु करिवि को वंचउ] कौन छूआछूत करके अपने आप को ठगे? [हल सहि कलहु केण समाणउ] कौन किससे मैत्री करे? कौन किससे कलह करे? [जहिँ कहिँ जोवउ तहिँ अप्पाणउ] जहाँ कहीं देखो, वहाँ आत्मा ही है ।

अनात्मज्ञानी कुतीर्थों में भ्रमता है

ताम कुतित्थइँ परिभमइ, धुत्तिम ताम करेइ
गुरुहु पसाएँ जाम णवि, अप्पा-देउ मुणेइ ॥41॥
गुरुकृपा से जबतक कि आतमदेव को नहिं जानता
तबतक भ्रमे कुत्तीर्थ में अर ना तजे जन धूर्तता ॥

अन्वयार्थ : [ताम कुतित्थइँ परिभमइ] तभी तक कुतीर्थों में भ्रमण करता है, [धुत्तिम ताम करेइ] धूर्तता भी तब तक ही करता है, [गुरुहु पसाएँ जाम] जब तक कि गुरु के प्रसाद से [णवि अप्पा-देउ मुणेइ] अपने आत्मदेव को नहीं जानता है ।

निज शरीर रुपी मंदिर में ही निश्चय से देव रहता है

तित्थइँ देवलि देउ णवि, इम सुइकेवलि-वुत्तु
देहा-देवलि देउ जिणु, एहउ जाणि णिरुत्तु ॥42॥
श्रुतकेवली ने यह कहा ना देव मन्दिर तीर्थ में
बस देह-देवल में रहे जिनदेव निश्चय जानिये ॥

अन्वयार्थ : [तित्थइँ देवलि देउ णवि] देव तीर्थों और मन्दिरों में नहीं [इम सुइकेवलि-वुत्तु] ऐसा श्रुतकेवलियों ने कहा है [देहा-देवलि देउ जिणु] देहरूपी देवालय में देव रहता है, [एहउ जाणि णिरुत्तु] ऐसा निःसन्देह जानो ।

देवालय में साक्षात् देव नहीं है

देहा-देवलि देउ जिणु, जणु देवलिहिँ णिएइ
हासउ महु पडिहाइ इहु, सिद्धे भिक्ख भमेइ ॥43॥
जिनदेव तनमन्दिर रहें जन मन्दिरों में खोजते
हँसी आती है कि मानो सिद्ध भोजन खोजते ॥

अन्वयार्थ : [देहा-देवलि देउ जिणु] जिनदेव तो इस देहरूपी देवालय में रहते हैं, [जणु देवलिहिँ णिएइ] परन्तु अज्ञानी उसे मन्दिरों में देखते हैं, खोजते हैं, [हासउ महु पडिहाइ इहु] मुझे यह देखकर बड़ी हँसी आती है कि [सिद्धे भिक्ख भमेइ] मानो सिद्ध, भिक्षा-हेतु भ्रमण करते हैं ।

समभावरूप चित्त से अपने देह में जिनदेव को देख

मूढा देवलि देउ णवि, णवि सिलि लिप्पइ चित्ति
देहा-देवलि देउ जिणु, सो बुज्झहि समिचित्ति ॥44॥
देव देवल में नहीं रे मूढ! ना चित्राम में
वे देह-देवल में रहें सम चित्त से यह जान ले ॥

अन्वयार्थ : [मूढा देवलि देउ णवि] हे मूढ़ ! देव मन्दिर में नहीं है, [णवि सिलि लिप्पइ चित्ति] किसी मूर्ति, लेप या चित्र में भी देव नहीं है, [देहा-देवलि देउ जिणु] देव तो इस देहरूपी देवालय में है, [सो बुज्झहि समिचित्ति] उसे तू समभाव से जान ।

ज्ञानी ही शरीररुपी मंदिर में परमात्मा को देखता है

तित्थइ देउलि देउ जिणु, सव्वु वि कोइ भणेइ

देहा-देउलि जो मुणइ, सो बुहु को वि हवेइ ॥45॥
सारा जगत यह कहे श्री जिनदेव देवल में रहें
पर विरल ज्ञानी जन कहें कि देह-देवल में रहें ॥
अन्वयार्थ : [तित्थइ देउलि देउ जिणु] देव तीर्थों और मन्दिरों में है [सव्वु वि कोइ भणेइ] ऐसा सब कहते हैं, [देहा-देउलि जो मुणइ] देहरूपी देवालय में ही देव मानता है [सो बुहु को वि हवेइ] ऐसा ज्ञानी कोई विरला ही होता है ।

धर्मामृत के पान से अमरता

जइ जर-मरण-करालियउ, तो जिय धम्म करेहि
धम्म-रसायणु पियहि तुहुँ, जिम अजरामर होहि ॥46॥
यदि जरा भी भय है तुझे इस जरा एवं मरण से
तो धर्मरस का पान कर हो जाय अजरा-अमर तू ॥
अन्वयार्थ : [जइ जर-मरण-करालियउ] यदि तू जरा-मरण से भयभीत है [तो जिय धम्म करेहि] तो हे जीव ! धर्म कर, [धम्म-रसायणु पियहि तुहुँ] तू धर्म-रसायन का पान कर [जिम अजरामर होहि] जिससे अजर-अमर हो सके ।

बाहरी क्रिया में धर्म नहीं

धम्मु ण पढ़ियइँ होइ, धम्मु ण पोत्था-पिच्छियइँ
धम्मु ण मढिय-पएसि, धम्मु ण मत्था-लुंचियइँ ॥47॥
पोथी पढ़े से धर्म ना ना धर्म मठ के वास से
ना धर्म मस्तक लुंच से ना धर्म पीछी ग्रहण से ॥
अन्वयार्थ : [धम्मु ण पढ़ियइँ होइ] पढ़ने से धर्म नहीं होता, [धम्मु ण पोत्था-पिच्छियइँ] पुस्तक व पिच्छी से भी धर्म नहीं होता, [धम्मु ण मढिय-पएसि] मठ में रहने से भी धर्म नहीं होता, और [धम्मु ण मत्था-लुंचियइँ] केशलोंच करने से भी धर्म नहीं होता ।

राग-द्वेष रहित आत्मस्थ होना ही धर्म

राय-रोस बे परिहरिवि, जो अप्पाणि वसेइ
सो धम्मु वि जिण-उत्तियउ, जो पंचम-गइ णेइ ॥48॥
परिहार कर रुष-राग आतम में बसे जो आतमा
बस पायगा पंचम गति वह आतमा धर्मातमा ॥
अन्वयार्थ : [राय-रोस बे परिहरिवि] राग-द्वेष - इन दोनों को छोड़कर [जो अप्पाणि वसेइ] जो आत्मा में वास करता है, [सो धम्मु वि जिण-उत्तियउ] उसे ही जिनेन्द्र-देव ने धर्म कहा है [जो पंचम-गइ णेइ] यही पंचम गति (मोक्ष) में ले जाता है ।

आशा तृष्णा ही संसार-भ्रमण का कारण है

आउ गलइ णवि मणु गलइ, णवि आसा हु गलेइ
मोहु फुरइ णवि अप्पहिउ, इम संसार भमेइ ॥49॥
आयु गले मन ना गले ना गले आशा जीव की
मोह स्फुरे हित ना स्फुरे यह दुर्गति इस जीव की ॥
अन्वयार्थ : [आउ गलइ णवि मणु गलइ] आयु गल जाती है, पर मन नहीं गलता, [णवि आसा हु गलेइ] आशा नहीं गलती [मोहु फुरइ णवि अप्पहिउ] मोह तो स्फुरित होता है, परन्तु आत्महित का स्फुरण नहीं होता [इम संसार भमेइ] इसी से संसार में भ्रमण होता है ।

आत्म-प्रेमी ही निर्वाण का पात्र

जेहउ मणु विसयहँ रमइ, तिसु जइ अप्प मुणेइ
जोइउ भणइ हो जोइयहु, लहु णिव्वाणु लहेइ ॥50॥
ज्यों मन रमे विषयानि में यदि आतमा में त्यों रमे
योगी कहें हे योगिजन! तो शीघ्र जावे मोक्ष में ॥

अन्वयार्थ : [जेहउ मणु विसयहँ रमइ] जिस तरह यह मन विषयों में रमण करता है, [तिसु जइ अप्प मुणेइ] उस तरह आत्मा को जानने में लगे तो [जोइउ भणइ] योगी कहते हैं [हो जोइयहु] हे योगी [लहु णिव्वाणु लहेइ] शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त करे ।

शरीर को नरक समान जानो

जेहउ जज्जरु णरय-घरु, तेहउ बुज्झि सरीरु
अप्पा भावहि णिम्मलउ, लहु पावहि भवतीरु ॥51॥
'जरजरित है नरक सम यह देह' - ऐसा जानकर
यदि करो आतम भावना तो शीघ्र ही भव पार हो ॥

अन्वयार्थ : [जेहउ जज्जरु णरय-घरु] जैसे नरकगृह जर्जर (आपत्तियों से पूर्ण) है [तेहउ बुज्झि सरीरु] वैसे ही शरीर को समझ, [अप्पा भावहि णिम्मलउ] निर्मल आत्मा की ही भावना कर, [लहु पावहि भवतीरु] ताकि शीघ्र संसार से पार हो ।

जगत के धंधों में मत उलझ

धंधइ पडियउ सयल जगि, णवि अप्पा हु मुणंति
तहिँ कारणि ए जीव फुडु, ण हु णिव्वाणु लहंति ॥52॥
धंधे पड़ा सारा जगत निज आतमा जाने नहीं
बस इसलिए ही जीव यह निर्वाण को पाता नहीं ॥

अन्वयार्थ : [धंधइ पडियउ सयल जगि] सारे संसार के प्राणी अपने-अपने धंधों में फँसे हुए [णवि अप्पा हु मुणंति] आत्मा को नहीं पहिचानते, [तहिँ कारणि ए जीव फुडु] यही स्पष्ट कारण है कि वे जीव [ण हु णिव्वाणु लहंति] निर्वाण को नहीं प्राप्त करते ।

शास्त्र पाठ आत्मज्ञान बिना निष्फल है

सत्थ पढंतह ते वि जड, अप्पा जे ण मुणंति
तहिँ कारणि ए जीव फुडु, ण हु णिव्वाणु लहंति ॥53॥
शास्त्र पढ़ता जीव जड़ पर आतमा जाने नहीं
बस इसलिए ही जीव यह निर्वाण को पाता नहीं ॥

अन्वयार्थ : [सत्थ पढंतह ते वि जड] शास्त्रों को पढ़ते हुए भी वे जड़ ही हैं [अप्पा जे ण मुणंति] जो आत्मा को नहीं जानते, [तहिँ कारणि ए जीव फुडु] स्पष्टत: इसीकारण से वे जीव [ण हु णिव्वाणु लहंति] निर्वाण को नहीं प्राप्त करते हैं ।

इन्द्रिय और मन को छोड़कर सहज आत्मज्ञान

मणु-इंदिहि वि छोडियइ, बुहु पुच्छियइ ण कोइ
रायहँ पसरु णिवारियइ, सहज उपज्जइ सोइ ॥54॥
परतंत्रता मन-इन्द्रियों की जाय फिर क्या पूछना
रुक जाय राग-द्वेष तो हो उदित आतम भावना ॥

अन्वयार्थ : [मणु-इंदिहि वि छोडियइ] मन और इन्द्रियों से छुटकारा प्राप्त कर [बुहु पुच्छियइ ण कोइ] अधिक किसी से कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं है [रायहँ पसरु णिवारियइ] राग के प्रसार को रोकने से [सहज उपज्जइ सोइ] सहज ही आत्मभाव प्रकट होता है ।

पुद्गल व जगत के व्यवहार से आत्मा को भिन्न जानो

पुग्गलु अण्णु जि अण्णु जिउ, अण्णु वि सहु ववहारु
चयहि वि पुग्गलु गहहि जिउ, लहु पावहि भवपारु ॥55॥
जीव पुद्गल भिन्न हैं अर भिन्न सब व्यवहार है
यदि तजे पुद्गल गहे आतम सहज ही भवपार है ॥

अन्वयार्थ : [पुग्गलु अण्णु जि अण्णु जिउ] पुद्गल भिन्न है और जीव भिन्न है [अण्णु वि सहु ववहारु] सब व्यवहार भी जीव से भिन्न है, [चयहि वि पुग्गलु गहहि जिउ] हे जीव ! पुद्गल को छोड़ो और जीव को ग्रहण करो, [लहु पावहि भवपारु] और शीघ्र ही संसार से पार होओ ।

आत्मानुभवी ही संसार से मुक्त होता है

जे णवि मण्णहिँ जीव फुडु, जे णवि जीउ मुणंति
ते जिण-णाहहँ उत्तिया, णउ संसारमुचंति ॥56॥
ना जानते-पहिचानते निज आतमा गहराई से
जिनवर कहें संसार-सागर पार वे होते नहीं ॥

अन्वयार्थ : [जे णवि मण्णहिँ जीव फुडु] स्पष्टत: जो आत्मा को नहीं जानते हैं [जे णवि जीउ मुणंति] और आत्मा का अनुभव नहीं करते हैं, [ते जिण-णाहहँ उत्तिया] वे, जिनेन्द्र देव कहते हैं, [णउ संसारमुचंति] संसार से मुक्त नहीं होते ।

आत्मा के ज्ञान के लिए नौ दृष्टांत

रयण दीउ दिणयर दहिउ, दुद्धु घीव पाहाणु
सुण्णउ रुउ फलिहउ अगिणि, णव दिट्ठंता जाणु ॥57॥
रतन दीपक सूर्य घी दधि दूध पत्थर अर दहन
सुवर्ण रूपा स्फटिक मणि से जानिये निज आत्मन् ॥

अन्वयार्थ : [रयण] १. रत्न, [दीउ] २. दीप, [दिणयर] ३. सूर्य, [दहिउ दुद्धु घीव] ४. दही-दूध-घी (अथवा दही-दूध में घी), [पाहाणु] ५. पाषाण, [सुण्णउ] ६. सोना, [रुउ] ७. चाँदी, [फलिहउ] ८. स्फटिक मणि और [अगिणि] ९. अग्नि [णव दिट्ठंता जाणु] इन नौ दृष्टान्तों को अच्छी तरह समझो ।

देहादिरूप मैं नहीं -- यही ज्ञान मोक्ष का बीज है

देहादिउ जो परु मुणइ, जेहउ सुण्णु अयासु
सो लहु पावइ बंभु परु, केवलु करइ पयासु ॥58॥
शून्य नभ सम भिन्न जाने देह को जो आतमा
सर्वज्ञता को प्राप्त हो अर शीघ्र पावे आतमा ॥

अन्वयार्थ : [देहादिउ] देहादि को [जो परु मुणइ] जो पर मानता है [जेहउ सुण्णु अयासु] शून्य आकाश की भाँति, [सो लहु पावइ बंभु परु] वह शीघ्र परब्रह्म को प्राप्त करता है और [केवलु करइ पयासु] केवलज्ञान का प्रकाश करता है ।

आकाश के समान होकर भी मैं सचेतन हूँ

जेहउ सुद्ध अयासु जिय, तेहउ अप्पा वुत्तु
आयासु वि जडु जाणि जिय, अप्पा चेयणुवंतु ॥59॥
आकाश सम ही शुद्ध है निज आतमा परमातमा

आकाश है जड़ किन्तु चेतन तत्त्व तेरा आतमा ॥

अन्वयार्थ : [जेहउ सुद्ध अयासु जिय] जैसा आकाश शुद्ध है हे जीव ! [तेहउ अप्पा वुत्तु] वैसा ही आत्मा कहा गया है, [आयासु वि जडु जाणि] आकाश तो जड़ है, [जिय, अप्पा चेयणुवंतु] हे जीव ! आत्मा चेतन है ।

अपने भीतर ही मोक्ष-मार्ग है

णासग्गिँ अब्भिंतरहँ, जे जोवहिँ असरीरु
बाहुडि जम्मि ण संभवहिँ, पिवहिँ ण जणणी-खीरु ॥60॥
नासाग्र दृष्टिवंत हो देखें अदेही जीव को
वे जनम धारण ना करें ना पियें जननी-क्षीर को ॥

अन्वयार्थ : [णासग्गिँ अब्भिंतरहँ] नासाग्र दृष्टि से अपने अन्तर में [जे जोवहिँ असरीरु] अशरीरी (आत्मा) को देखते हैं, [बाहुडि जम्मि ण संभवहिँ] वे इस संसार में बार-बार जन्म नहीं पाएंगे, [पिवहिँ ण जणणी-खीरु] माँ का दूध नहीं पीते ।

निर्मोही होकर अपने अमूर्तिक आत्मा को देखें

असरीरु वि सुसरीरु मुणि, इहु सरीरु जडु जाणि
मिच्छा-मोहु परिच्चयहि, मुत्ति णियं वि ण माणि ॥61॥
अशरीर को सुशरीर अर इस देह को जड़ जान लो
सब छोड़ मिथ्या-मोह इस जड़ देह को पर मान लो ॥

अन्वयार्थ : [असरीरु वि सुसरीरु मुणि] अशरीरी (आत्मा) को ही उत्तम (ज्ञान) शरीर जानो [इहु सरीरु जडु जाणि] यह शरीर तो जड़ है [मिच्छा-मोहु परिच्चयहि] मिथ्या-मोह का त्याग करो और [मुत्ति णियं वि ण माणि] शरीर-जैसा स्वयं को मत मानो ।

आत्मानुभव का फल केवलज्ञान व अविनाशी सुख

अप्पइँ अप्पु मुणंतयहँ, किं णेहा फलु होइ
केवल-णाणु वि परिणवइ, सासय-सुक्खु लहेइ ॥62॥
अपनत्व आतम में रहे तो कौन-सा फल ना मिले?
बस होय केवलज्ञान एवं अखय आनंद परिणमे ॥

अन्वयार्थ : [अप्पइँ अप्पु मुणंतयहँ] आत्मा से आत्मा को जानने पर [किं णेहा फलु होइ] कौन-सा फल नहीं मिलता? [केवल-णाणु वि परिणवइ] केवलज्ञान भी हो जाता है [सासय-सुक्खु लहेइ] शाश्वत सुख की भी प्राप्ति हो जाती है ।

परभाव का त्याग संसार त्याग का कारण है

जे परभाव चएवि मुणि, अप्पा अप्प मुणंति
केवल-णाण-सरुव लइ, ते संसारु मुचंति ॥63॥
परभाव को परित्याग जो अपनत्व आतम में करें
वे लहें केवलज्ञान अर संसार-सागर परिहरें ॥

अन्वयार्थ : [जे परभाव चएवि मुणि] जो मुनि परभावों का त्याग करके [अप्पा अप्प मुणंति] आत्मा से आत्मा का अनुभव करते हैं, [केवल-णाण-सरुव लइ] वे केवलज्ञान प्राप्तकर [ते संसारु मुचंति] संसार से मुक्त हो जाते हैं ।

धन्य हैं वे जिन्होंने समस्त पर-भावों को त्याग दिया

धण्णा ते भयवंत बुह, जे परभाव चयंति
लोयालोय-पयासयरु, अप्पा विमल मुणंति ॥64॥

हैं धन्य वे भगवन्त बुध परभाव जो परित्यागते
जो लोक और अलोक ज्ञायक आतमा को जानते ॥

अन्वयार्थ : [धण्णा ते भयवंत बुह] धन्य हैं वे भगवन्त ज्ञानी पुरुष [जे परभाव चयंति] जो सर्व परभावों का त्याग कर देते हैं और [लोयालोय-पयासयरु] लोकालोक को प्रकाशकर [अप्पा विमल मुणंति] निर्मल आत्मा का अनुभव करते हैं ।

गृहस्थ हो या मुनि आत्मा में वास की प्रेरणा

सागारु वि णागारु कु वि, जो अप्पाणि वसेइ
सो लहु पावइ सिद्धि-सुहु, जिणवरु एम भणेइ ॥65॥
सागार या अनगार हो पर आतमा में वास हो
जिनवर कहें अतिशीघ्र ही वह परमसुख को प्राप्त हो ॥

अन्वयार्थ : [सागारु वि णागारु कु वि] सागार (गृहस्थ) हो या अनगार (मुनि), [जो अप्पाणि वसेइ] जो कोई भी आत्मा में निवास करता है, [सो लहु पावइ सिद्धि-सुहु] वही शीघ्र मोक्ष-सुख को प्राप्त करता है, [जिणवरु एम भणेइ] ऐसा जिनवर कहते हैं ।

तत्त्वश्रद्धानी विरले होते हैं

विरला जाणहिँ तत्तु बुह, विरला णिसुणहिँ तत्तु
विरला झायहिँ तत्तु जिय, विरला धारहिँ तत्तु ॥66॥
विरले पुरुष ही जानते निज तत्त्व को विरले सुनें
विरले करें निज ध्यान अर विरले पुरुष धारण करें ॥

अन्वयार्थ : [विरला जाणहिँ तत्तु बुह] कोई विरला ज्ञानी ही तत्त्व को जानता है, [विरला णिसुणहिँ तत्तु] विरला ही तत्त्व को सुनता है, [विरला झायहिँ तत्तु जिय] विरला ही तत्त्व का ध्यान करता है, हे जीव ! और [विरला धारहिँ तत्तु] विरला ही तत्त्व को अपने हृदय में धारण करता है ।

कुटुम्ब मोह त्यागने योग्य है

इहु परियण ण हु महुतणउ, इहु सुहु-दुक्खहँ हेउ
इम चिंतंतहँ किं करइ, लहु संसारहँ छेउ ॥67॥
'सुख-दुःख के हैं हेतु परिजन किन्तु वे परमार्थ से
मेरे नहीं' - यह सोचने से मुक्त हों भवभार से ॥

अन्वयार्थ : [इहु परियण ण हु महुतणउ] ये परिजन मेरे नहीं हैं, [इहु सुहु-दुक्खहँ हेउ] ये तो क्षणिक सुख-दुःख के हेतु हैं, [इम चिंतंतहँ किं करइ] इसकी चिंता क्यों करता है [लहु संसारहँ छेउ] शीघ्र ही संसार को छोड़ ।

अशरण भावना

इंद फणिंद णरिंदय वि, जीवहँ सरणु ण होंति
असरणु जाणिवि मुणि-धवल, अप्पा अप्प मुणंति ॥68॥
नागेन्द्र इन्द्र नरेन्द्र भी ना आतमा को शरण दें
यह जानकर हि मुनीन्द्रजन निज आतमा शरणा गहें ॥

अन्वयार्थ : [इंद फणिंद णरिंदय वि] इन्द्र, फणीन्द्र और नरेन्द्र भी [जीवहँ सरणु ण होंति] जीवों को शरण नहीं हैं, [असरणु जाणिवि मुणि-धवल] उन सब को अशरण जानकर उत्तम मुनिराज [अप्पा अप्प मुणंति] आत्मा को आत्मा से जानते हैं ।

एकत्व भावना

इक्क उपज्जइ मरइ कु वि, दुहु सुहु भुंजइ इक्कु
णरयहँ जाइ वि इक्क जिउ, तह णिव्वाणहँ इक्कु ॥69॥
एक्कुलउ जइ जाइसिहि, तो परभाव चएहि
अप्पा झायहि णाणमउ, लहु सिव-सुक्ख लहेहि ॥70॥
यदि एकला है जीव तो परभाव सब परित्याग कर
ध्या ज्ञानमय निज आतमा अर शीघ्र शिवसुख प्राप्त कर ॥
जन्मे-मरे सुख-दुःख भोगे नरक जावे एकला
अरे! मुक्तीमहल में भी जायेगा जिय एकला ॥
अन्वयार्थ : [इक्क उपज्जइ मरइ कु वि] अकेला ही पैदा होता है और अकेला ही मरता है, [दुहु सुहु भुंजइ इक्कु] अकेला ही दुःख-सुख भोगता है, [णरयहँ जाइ वि इक्क जिउ] अकेला ही नरक में जाता है और [तह णिव्वाणहँ इक्कु] अकेला ही निर्वाण में जाता है । [एक्कुलउ जइ जाइसिहि] यदि अकेला ही जाता है [तो परभाव चएहि] तो समस्त परभावों को त्याग दे और [अप्पा झायहि णाणमउ] ज्ञानमय आत्मा का ही ध्यान कर, [लहु सिव-सुक्ख लहेहि] शीघ्र ही मोक्ष-सुख प्राप्त होगा ।

पुण्य को भी पाप जाने वही ज्ञानी

जो पाउ वि सो पाउ मुणि, सब्बु इ को वि मुणेहि
जो पुण्णु वि पाउ वि भणइ, सो बुह को वि हवेइ ॥71॥
हर पाप को सारा जगत ही बोलता - यह पाप है
पर कोई विरला बुध कहे कि पुण्य भी तो पाप है ॥
अन्वयार्थ : [जो पाउ वि सो पाउ मुणि] जो पाप है उसे तो पाप जानो, [सब्बु इ को वि मुणेहि] यह तो सब मानते हैं [जो पुण्णु वि पाउ वि भणइ] जो पुण्य को भी पाप कहता है [सो बुह को वि हवेइ] वह कोई विरला ज्ञानी ही होता है ।

पुण्य और पाप में बन्ध की अपेक्षा समानता

जह लोहम्मिय णियउ बुह, तह सुण्णम्मिय जाणि
जे सुहु असुह परिच्चयहिँ, ते वि हवंति हु णाणि ॥72॥
लोह और सुवर्ण की बेड़ी में अन्तर है नहीं
शुभ-अशुभ छोड़ें ज्ञानिजन दोनों में अन्तर है नहीं ॥
अन्वयार्थ : [जह लोहम्मिय णियउ बुह] जैसी लोहे की बेड़ी होती है हे ज्ञानी ! [तह सुण्णम्मिय जाणि] वैसे ही सोने की बेड़ी होती है, [जे सुहु असुह परिच्चयहिँ] जो शुभ और अशुभ दोनों को त्याग देते हैं, [ते वि हवंति हु णाणि] वे ही वास्तव में ज्ञानी होते हैं ।

भाव से नग्न हो सच्चा मोक्ष-मार्गी

जइया मणु णिग्गंथु जिय, तइया तुहुँ णिग्गंथु
जइया तुहुँ णिग्गंथु जिय, तो लब्भइ सिवपंथु ॥73॥
हो जाय जब निर्ग्रन्थ मन निर्ग्रन्थ तब ही तू बने
निर्ग्रन्थ जब हो जाय तू तब मुक्ति का मारग मिले ॥
अन्वयार्थ : [जइया मणु णिग्गंथु जिय] जब तेरा मन निर्ग्रन्थ होगा हे जीव ! [तइया तुहुँ णिग्गंथु] तभी तू सच्चा निर्ग्रन्थ होगा [जइया तुहुँ णिग्गंथु जिय] जब तू निर्ग्रन्थ होगा, [तो लब्भइ सिवपंथु] तभी मोक्षमार्ग को प्राप्त कर सकेगा ।

इसी देह में त्रिलोक-प्रधान भगवान रहता है

जं वड्मज्झहँ बीउ फुडु, बीयहँ बडु वि हु जाणु

तं देहहँ देउ वि मुणहि, जो तइलोय-पहाणु ॥74॥
जिस भाँति बड़ में बीज है उस भाँति बड़ भी बीज में
बस इस तरह त्रैलोक्य जिन आतम बसे इस देह में ॥
अन्वयार्थ : [जं वड्मज्झहँ बीउ फुडु] जैसे बरगद के वृक्ष में बीज को देखकर [बीयहँ बडु वि हु जाणु] बीज में वट भी जानने में आता है, [तं देहहँ देउ वि मुणहि] उसीप्रकार इस देह में देव को जानो [जो तइलोय-पहाणु] जो तीनों लोक में प्रधान है ।

आप स्वयं ही जिन है -- यही भावना मोक्ष का उपाय

जो जिण सो हउँ सो जि हउँ, एहउ भाउ णिभंतु
मोक्खहँ कारण जोइया, अण्णु ण तंतु ण मंतु ॥75॥
जिनदेव जो मैं भी वही इस भाँति मन निर्भ्रान्त हो
है यही शिवमग योगिजन ! ना मंत्र एवं तंत्र है ॥
अन्वयार्थ : [जो जिण सो हउँ] जो जिन है वही मैं हूँ [सो जि हउँ] इसलिए मैं ही जिन हूँ [एहउ भाउ णिभंतु] ऐसी निःसंदेह भावना कर [मोक्खहँ कारण जोइया] मोक्ष का कारण यही है हे योगी ! [अण्णु ण तंतु ण मंतु] अन्य कोई तन्त्र-मन्त्र आदि नहीं ।

आत्मा को लक्षण द्वारा जान

बे ते चउ पंच वि णवहँ, सत्तहँ छह पंचाहँ
चउगुण-सहियउ सो मुणह, एयइँ लक्खण जाहँ ॥76॥
दो तीन चउ अर पाँच नव अर सात छह अर पाँच फिर
अर चार गुण जिसमें बसें उस आतमा को जानिए ॥
अन्वयार्थ : [बे ते चउ पंच वि णवहँ] दो, तीन, चार, पाँच, नौ, [सत्तहँ छह पंचाहँ] सात, छह, पाँच और [चउगुण-सहियउ सो मुणह] चार गुण सहित [एयइँ लक्खण जाहँ] ये लक्षण जिसके हैं (उस आत्मा को जानो) ।

दो को छोड़ दो गुण सहित आत्मा में वास करो

बे छंडिवि बे-गुण-सहिउ, जो अप्पाणि वसेइ
जिणु सामिउ एमइँ भणइ, लहु णिव्वाणु लहेइ ॥77॥
दो छोड़कर दो गुण सहित परमातमा में जो बसे
शिवपद लहें वे शीघ्र ही - इस भाँति सब जिनवर कहें ॥
अन्वयार्थ : [बे छंडिवि बे-गुण-सहिउ] दो (राग-द्वेष) छोड़कर और दो (ज्ञान-दर्शन) सहित होकर [जो अप्पाणि वसेइ] जो आत्मा में निवास करता है, [जो अप्पाणि वसेइ] जिन स्वामी ऐसा कहते हैं [लहु णिव्वाणु लहेइ] वह शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त करता है ।

तीन को छोड़ तीन गुण सहित आत्मा में वास करो

तिहिँ रहियउ तिहिँ गुण-सहिउ, जो अप्पाणि वसेइ
सो सासय-सुइ-भायणु वि, जिणवरु एम भणेइ ॥78॥
तज तीन त्रयगुण सहित निज परमातमा में जो बसे
शिवपद लहें वे शीघ्र ही - इस भाँति सब जिनवर कहें ॥
अन्वयार्थ : [तिहिँ रहियउ तिहिँ गुण-सहिउ] तीन (मोह-राग-द्वेष) से रहित होकर और तीन गुणों (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) से सहित होकर [जो अप्पाणि वसेइ] जो आत्मा में निवास करता है, [सो सासय-सुइ-भायणु वि] वह शाश्वत सुख का पात्र होता है, [जिणवरु एम भणेइ] ऐसा जिनवर कहते हैं ।

चार को छोड़ चार गुण सहित आत्मा में वास करो

चउ-कसाय-सण्णा-रहिउ, चउ-गुण-सहियउ वुत्तु
सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ, जिम परु होहि पवित्तु ॥79॥
जो रहित चार कषाय संज्ञा चार गुण से सहित हो
तुम उसे जानो आतमा तो परमपावन हो सको ॥

अन्वयार्थ : [चउ-कसाय-सण्णा-रहिउ] चार कषायों व चार संज्ञाओं से रहित [चउ-गुण-सहियउ वुत्तु] चार गुणों (दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य) से सहित, [सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ] उस आत्मा की हे जीव ! तू श्रद्धा कर, [जिम परु होहि पवित्तु] जिससे तू परम-पवित्र हो सके ।

पांच-पांच को छोड़ पांच-पांच गुण सहित आत्मा में वास करो

बे-पंचहँ रहियउ मुणहि, बे-पंचहँ संजुत्तु
बे-पंचहँ जो गुणसहिउ, सो अप्पा णिरु वुत्तु ॥80॥
जो दश रहित दश सहित एवं दश गुणों से सहित हो
तुम उसे जानो आतमा अर उसी में नित रत रहो ॥

अन्वयार्थ : [बे-पंचहँ रहियउ मुणहि] पांच (इन्द्रिय विषय) और पांच (अव्रत) से रहित, पांच (इन्द्रिय विजय) और पांच (महाव्रत) से संयुक्त, [बे-पंचहँ जो गुणसहिउ] ऐसे पांच-पांच गुण सहित, [सो अप्पा णिरु वुत्तु] उसे ही निश्चय से आत्मा कहा गया है ।

आत्मरमण में तप-त्यागादि सब कुछ है

अप्पा दंसणु णाणु मुणि, अप्पा चरणु वियाणि
अप्पा संजमु सील तउ, अप्पा पच्चक्खाणि ॥81॥
निज आतमा है ज्ञान दर्शन चरण भी निज आतमा
तप शील प्रत्याख्यान संयम भी कहे निज आतमा ॥

अन्वयार्थ : [अप्पा दंसणु णाणु मुणि] आत्मा को ही दर्शन-ज्ञान जानो, [अप्पा चरणु वियाणि] आत्मा को ही चारित्र समझो, [अप्पा संजमु सील तउ] आत्मा ही संयम, शील, तप है [अप्पा पच्चक्खाणि] आत्मा ही प्रत्याख्यान है ।

पर-भावों का त्याग ही संन्यास है

जो परियाणइ अप्प परु, सो परु चयइ णिभंतु
सो सण्णासु मुणेहि तहुँ, केवल-णाणिं उत्तु ॥82॥
जो जान लेता स्व-पर को निर्भ्रान्त हो वह पर तजे
जिन-केवली ने यह कहा कि बस यही संन्यास है ॥

अन्वयार्थ : [जो परियाणइ अप्प परु] जो स्व और पर को पहचान लेता है, [सो परु चयइ णिभंतु] वह निःसन्देह पर का त्याग कर देता है [सो सण्णासु मुणेहि तहुँ] इसे ही संन्यास समझो, [केवल-णाणिं उत्तु] ऐसा केवलज्ञानियों ने कहा है ।

रत्नत्रय धर्म ही उत्तम तीर्थ है

रयणत्तय-संजुत्त जिउ, उत्तिमु तित्थु पवित्तु
मोक्खहँ कारण जोइया, अण्णु ण तंतु ण मंतु ॥83॥
रतनत्रय से युक्त जो वह आतमा ही तीर्थ है
है मोक्ष का कारण वही ना मंत्र है ना तंत्र है ॥

अन्वयार्थ : [रयणत्तय-संजुत्त जिउ] रत्नत्रय से संयुक्त जीव ही [उत्तिमु तित्थु पवित्तु] उत्तम पवित्र तीर्थ है [मोक्खहँ कारण जोइया] मोक्ष

का कारण है हे योगी ! [अण्णु ण तंतु ण मंतु] अन्य कोई मंत्र-तंत्र आदि नहीं ।

रत्नत्रय का स्वरूप

दंसणु जं पिच्छियइ बुह, अप्पा विमल महंतु
पुणु पुणु अप्पा भावियए, सो चारित्त पवित्तु ॥84॥
निज देखना दर्शन तथा निज जानना ही ज्ञान है
जो हो सतत वह आतमा की भावना चारित्र है ॥

अन्वयार्थ : [अप्पा विमल महंतु] निर्मल आत्मा को [दंसणु जं पिच्छियइ बुह] देखना वही दर्शन जानना वही ज्ञान और [पुणु पुणु अप्पा भावियए] पुनः पुनः आत्मा की भावना [सो चारित्त पवित्तु] वही पवित्र चारित्र है ।

आत्मानुभव में सब गुण हैं

जहिँ अप्पा तहिँ सयल-गुण, केवलि एम भणंति
तिहिँ कारणएँ जोइ फुडु, अप्पा विमलु मुणंति ॥85॥
जिन-केवली ऐसा कहें - 'तहँ सकल गुण जहँ आतमा'
बस इसलिए ही योगीजन ध्याते सदा ही आतमा ॥

अन्वयार्थ : [जहिँ अप्पा तहिँ सयल-गुण] जहाँ आत्मा है, वहीं सारे गुण हैं, [केवलि एम भणंति] ऐसा केवलज्ञानी कहते हैं [तिहिँ कारणएँ जोइ फुडु] स्पष्टत: यही कारण है कि योगीजन सदा [अप्पा विमलु मुणंति] निर्मल आत्मा को ही जानते रहते हैं ।

एकाकी होकर एक आत्मा का ही मनन कर

एक्कलउ इंदिय-रहियउ, मण-वय-काय-ति-सुद्धि
अप्पा अप्पु मुणेहि तुहुँ, लहु पावहि सिव-सिद्धि ॥86॥
तू एकला इन्द्रिय रहित मन वचन तन से शुद्ध हो
निज आतमा को जान ले तो शीघ्र ही शिवसिद्ध हो ॥

अन्वयार्थ : [एक्कलउ इंदिय-रहियउ] एकाकी (परिग्रह-रहित) इन्द्रिय रहित होकर, [मण-वय-काय-ति-सुद्धि] मन, वचन और काय से शुद्ध होता हुआ [अप्पा अप्पु मुणेहि तुहुँ] अपनी आत्मा को अपने से जान [लहु पावहि सिव-सिद्धि] तू शीघ्र ही शिव सिद्धि पाएगा ।

सहज स्वरूप में रमण कर

जइ बद्धउ मुक्कउ मुणहि, तो बंधियहि णिभंतु
सहज-सरूवइ जइ रमहि, तो पायहि सिव संतु ॥87॥
यदि बद्ध और अबद्ध माने बँधेगा निर्भ्रान्त ही
जो रमेगा सहजात्म में तो पायेगा शिव शान्ति ही ॥

अन्वयार्थ : [जइ बद्धउ मुक्कउ मुणहि] यदि (तू आत्मा को) बद्ध या मुक्त मानेगा [तो बंधियहि णिभंतु] तो निःसन्देह बँधेगा और [सहज-सरूवइ जइ रमहि] यदि तू सहज-स्वरूप में रमण करेगा [तो पायहि सिव संतु] तो मोक्षरूप शान्त अवस्था को प्राप्त करेगा ।

सम्यग्दृष्टि सुगति पाता है

सम्माइट्ठी-जीवडहँ, दुग्गइ-गमणु ण होइ
जइ जाइ वि तो दोसु णवि, पुव्वक्किउ खवणेइ ॥88॥
जो जीव सम्यग्दृष्टि दुर्गति-गमन ना कबहूँ करें
यदि करें भी ना दोष पूरब करम को ही क्षय करें ॥

अन्वयार्थ : [सम्माइट्ठी-जीवडहँ] सम्यग्दृष्टि जीव का [दुग्गइ-गमणु ण होइ] दुर्गति में गमन नहीं होता [जइ जाइ वि तो दोसु णवि] यदि कदाचित् जाता भी है तो कोई दोष नहीं है, [पुव्वक्किउ खवणेइ] पूर्वकृत कर्मों का क्षय ही करता है ।

सर्व व्यवहार छोड़कर आत्मा में रमण ही सम्यग्दर्शन

अप्प-सरूवइँ जो रमइ, छंडिवि सहु ववहारु
सो सम्माइट्ठी हवइ, लहु पावइ भवपारु ॥89॥
सब छोड़कर व्यवहार नित निज आतमा में जो रमें
वे जीव सम्यग्दृष्टि तुरतहिं शिवरमा में जा रमें ॥

अन्वयार्थ : [अप्प-सरूवइँ जो रमइ] जो आत्म-स्वरूप में रमण करता है, [छंडिवि सहु ववहारु] सर्व व्यवहार को छोड़कर [सो सम्माइट्ठी हवइ] वह सम्यग्दृष्टि है और [लहु पावइ भवपारु] शीघ्र ही संसार से पार होता है ।

सम्यक्त्वी ही पंडित व प्रधान है

जो सम्मत्त-पहाण बुहु, सो तइलोय-पहाणु
केवल-णाण वि लहु लहइ, सासय-सुक्ख-णिहाणु ॥90॥
सम्यक्त्व का प्राधान्य तो त्रैलोक्य में प्राधान्य भी
बुध शीघ्र पावे सदा सुखनिधि और केवलज्ञान भी ॥

अन्वयार्थ : [जो सम्मत्त-पहाण बुहु] जो सम्यक्त्व-प्रधान ज्ञान है, [सो तइलोय-पहाणु] वही तीन लोक में श्रेष्ठ है [केवल-णाण वि लहु लहइ] उसी से शीघ्र केवलज्ञान प्राप्त होता है (एवं) [सासय-सुक्ख-णिहाणु] शाश्वत सुख के निधान को प्राप्त होता है ।

आत्मा में स्थिरता संवर व निर्जरा का कारण है

अजरु अमरु गुण-गण-णिलउ, जहिँ अप्पा थिरु ठाइ
सो कम्मेहिँ ण बंधियउ, संचिय-पुव्व विलाइ ॥91॥
जहँ होय थिर गुणगणनिलय जिय अजर अमृत आतमा
तहँ कर्मबंधन हों नहीं झर जाँय पूरव कर्म भी ॥

अन्वयार्थ : [अजरु अमरु गुण-गण-णिलउ] अजर, अमर और गुणों के भण्डार [जहिँ अप्पा थिरु ठाइ] ऐसे आत्मा में स्थिर हो जाता है, [सो कम्मेहिँ ण बंधियउ] वह नवीन कर्मों से नहीं बँधता, [संचिय-पुव्व विलाइ] पूर्व-संचित कर्मों की निर्जरा करता है ।

अलिप्त भाव ही कर्मों से अलिप्तता का कारण

जह सलिलेण ण लिप्पियइ, कमलणि-पत्त कया वि
तह कम्मेहिं ण लिप्पियइ, जइ रइ अप्प-सहावि ॥92॥
जिसतरह पद्मनि-पत्र जल से लिप्त होता है नहीं
निजभावरत जिय कर्ममल से लिप्त होता है नहीं ॥

अन्वयार्थ : [जह सलिलेण ण लिप्पियइ] जैसे जल से लिप्त नहीं होता [कमलणि-पत्त कया वि] कमलिनी-पत्र कभी भी [तह कम्मेहिं ण लिप्पियइ] उसी तरह कर्मों से लिप्त नहीं होता [जइ रइ अप्प-सहावि] यदि आत्म-स्वभाव में लीनता हो ।

सम-सुख भोगी निर्वाण का पात्र है

जो सम-सुक्ख-णिलीणु बुहु, पुण पुण अप्पु मुणेइ
कम्मक्खउ करि सो वि फुडु, लहु णिव्वाणु लहेइ ॥93॥
लीन समसुख जीव बारम्बार ध्याते आतमा

वे कर्म क्षयकर शीघ्र पावें परमपद परमातमा ॥

अन्वयार्थ : [जो सम-सुक्ख-णिलीणु बुहु] जो ज्ञानी समता रुपी सुख में लीन [पुण पुण अप्पु मुणेइ] पुनः पुनः आत्मा को जानता है, [कम्मक्खउ करि सो वि फुडु] स्पष्टत: वह ही कर्मों का क्षय करके [लहु णिव्वाणु लहेइ] शीघ्र निर्वाण को प्राप्त करता है ।

आत्मा को पुरुषाकार पवित्र गुणों की खान जानो

पुरिसायार-पमाणु जिय, अप्पा एहु पवित्तु

जोइज्जइ गुण-गण-णिलउ, णिम्मल-तेय-फुरंतु ॥94॥

पुरुष के आकार जिय गुणगणनिलय सम सहित है

यह परमपावन जीव निर्मल तेज से स्फुरित है ॥

अन्वयार्थ : [जिय] हे जीव ! [पुरिसायार-पमाणु] पुरुषाकार प्रमाण [अप्पा एहु पवित्तु] यह आत्मा पवित्र है, [गुण-गण-णिलउ] गुणों का भण्डार है [जोइज्जइ] ऐसा देखो [णिम्मल-तेय-फुरंतु] जिससे निर्मल तेज स्फुरायमान हो ।

जो आत्मा को जानता है वह सब शास्त्रों का ज्ञाता होता है

जो अप्पा सुद्धु वि मुणइ, असुइ-सरीर-विभिण्णु

सो जाणइ सत्थइँ सयल, सासय-सुक्खहँ लीणु ॥95॥

इस अशुचि-तन से भिन्न आतमदेव को जो जानता

नित्य सुख में लीन बुध वह सकल जिनश्रुत जानता ॥

अन्वयार्थ : [जो अप्पा सुद्धु वि] जो आत्मा को शुद्ध ही [असुइ-सरीर-विभिण्णु] अशुचि शरीर से अत्यन्त भिन्न [मुणइ] मानता है, [सो जाणइ सत्थइँ सयल] वही सारे शास्त्रों को जानता है और [सासय-सुक्खहँ लीणु] शाश्वत सुख में लीन होता है ।

भेद-विज्ञान ही कार्यकारी है

जो णवि जाणइ अप्पु परु, णवि परभाउ चएइ

सो जाणउ सत्थइँ सयल, ण हु सिवसुक्खु लहेइ ॥96॥

जो स्व-पर को नहीं जानता छोड़े नहीं परभाव को

वह जानकर भी सकल श्रुत शिवसौख्य को ना प्राप्त हो ॥

अन्वयार्थ : [जो णवि जाणइ अप्पु परु] जो स्व और पर को नहीं जानता और [णवि परभाउ चएइ] परभावों का त्याग नहीं करता है, [सो जाणउ सत्थइँ सयल] वह सर्वशास्त्रों को जानने पर भी, [ण हु सिवसुक्खु लहेइ] मोक्ष-सुख को प्राप्त नहीं करता ।

परम समाधि शिव-सुख का कारण है

वज्जिय सयल-वियप्पइँ परम-समाहि लहंति

जं विंदहिं साणंदु क वि सो सिव-सुक्ख भणंति ॥97॥

सब विकल्पों का वमन कर जम जाय परम समाधि में

तब जो अतीन्द्रिय सुख मिले शिवसुख उसे जिनवर कहें ॥

अन्वयार्थ : [वज्जिय सयल-वियप्पइँ] समस्त विकल्पों से रहित होकर [परम-समाहि लहंति] परम-समाधि को प्राप्त कर, [जं विंदहिं साणंदु क वि] उस समय जिस आनन्द का अनुभव होता है [सो सिव-सुक्ख भणंति] उसे मोक्ष-सुख कहा है ।

आत्म-ध्यान चार प्रकार का

जो पिंडत्थु पयत्थु बुह, रूवत्थु वि जिण-उत्तु

रूवातीतु मुणेहि लहु, जिम परु होहि पवित्तु ॥98॥

पिण्डस्थ और पदस्थ अर रूपस्थ रूपातीत जो
शुभ ध्यान जिनवर ने कहे जानो कि परमपवित्र हो ॥

अन्वयार्थ : [बुह] हे ज्ञानी ! [जिण-उत्तु] जिनेन्द्र द्वारा कथित [जो पिंडत्थु पयत्थु बुह] जो पिण्डस्थ, पदस्थ [रूवत्थु वि], रूपस्थ और [रूवातीतु] रूपातीत (ध्यान) है [मुणेहि] उनको जानो [जिम] जिससे [लहु] शीघ्र ही [परु होहि पवित्तु] परम पवित्र हो जाओ ।

सामायिक चारित्र कथन

सव्वे जीवा णाणमया, जो सम-भाव मुणेइ
सो सामाइउ जाणि फुडु, जिणवर एम भणेइ ॥99॥
राय-रोस ये परिहरिवि, जो समभाउ मुणेइ
सो सामाइउ जाणि फुडु, केवलि एम भणेइ ॥100॥
'जीव हैं सब ज्ञानमय' इस रूप जो समभाव हो
है वही सामायिक कहें जिनदेव इसमें शक न हो ॥
जो राग एवं द्वेष के परिहार से समभाव हो
है वही सामायिक कहें जिनदेव इसमें शक न हो ॥

अन्वयार्थ : [सव्वे जीवा णाणमया] सब जीव ज्ञानमय हैं, [जो सम-भाव मुणेइ] ऐसा जानकर जो समता भाव रखता है [सो सामाइउ जाणि फुडु] उसे सामायिक होता है, ऐसा स्पष्ट जानो [जिणवर एम भणेइ] जिनवर देव ऐसा कहते हैं ।
[राय-रोस ये परिहरिवि] राग और द्वेष दोनों को छोड़कर [जो समभाउ मुणेइ] जो समभाव धारण किया जाता है, [सो सामाइउ जाणि फुडु] वही सामायिक है, ऐसा स्पष्ट जानो [केवलि एम भणेइ] केवलज्ञानी ऐसा कहते हैं ।

छेदोपस्थापना चारित्र कथन

हिंसादिउ-परिहारु करि, जो अप्पा हु ठवेइ
सो बियऊ चारित्तु मुणि, जो पंचम-गइ णेइ ॥101॥
हिंसादि के परिहार से जो आत्म-स्थिरता बढ़े
यह दूसरा चारित्र है जो मुक्ति का कारण कहा ॥

अन्वयार्थ : [हिंसादिउ-परिहारु करि] हिंसादि का त्याग करके [जो अप्पा हु ठवेइ] जो आत्मा में स्थिर होता है, [सो बियऊ चारित्तु मुणि] उसके दूसरा (छेदोपस्थापना) चारित्र होता है, [जो पंचम-गइ णेइ] जो पंचम गति में ले जाता है ।

परिहार-विशुद्धि चारित्र कथन

मिच्छादिउ जो परिहरणु, सम्मद्दंसण-सुद्धि
सो परिहार-विसुद्धि मुणि, लहु पावहि सिव-सिद्धि ॥102॥
जो बढ़े दर्शनशुद्धि मिथ्यात्वादि के परिहार से
परिहारशुद्धी चरित जानो सिद्धि के उपहार से ॥

अन्वयार्थ : [मिच्छादिउ जो परिहरणु] मिथ्यात्वादिक के परिहार (त्याग) से जो [सम्मद्दंसण-सुद्धि] शुद्ध सम्यग्दर्शन होता है, [सो परिहार-विसुद्धि मुणि] उसे परिहारविशुद्धि चारित्र जानो [लहु पावहि सिव-सिद्धि] इससे जीव शीघ्र मोक्षसिद्धि को प्राप्त करता है ।

यथाख्यात चारित्र कथन

सुहुहँ लोहहँ जो विलउ, जो सुहु वि परिणामु
सो सुहु वि चारित्त मुणि, सो सासय-सुह-धामु ॥103॥
लोभ सूक्षम जब गले तब सूक्ष्म सुध-उपयोग हो

है सूक्ष्मसाम्पराय जिसमें सदा सुख का भोग हो ॥

अन्वयार्थ : [सुहुमहँ लोहहँ जो विलउ] सूक्ष्म लोभ के नष्ट हो जाने पर [जो सुहुमु वि परिणामु] जो सूक्ष्म परिणाम होता है [सो सुहुमु वि चारित्त मुणि] उसे सूक्ष्म (यथाख्यात) चारित्र जानो [सो सासय-सुह-धामु] वह अविनाशी सुख का धाम है ।

शुद्धात्मा के कई नाम

अरहंतु वि सो सिद्धु फुडु, सो आयरिउ वियाणि
सो उवझायउ सो जि मुणि, णिच्छइँ अप्पा जाणि ॥104॥
सो सिउ संकरु विण्हु सो, सो रुद्धु वि सो बुद्धु
सो जिणु ईसरु बंभु सो, सो अणंतु सो सिद्धु ॥105॥
अरहंत सिद्धाचार्य पाठक साधु हैं परमेष्ठी पण
सब आतमा ही हैं श्री जिनदेव का निश्चय कथन ॥
वह आतमा ही विष्णु है जिन रुद्र शिव शंकर वही
बुद्ध ब्रह्मा सिद्ध ईश्वर है वही भगवन्त भी ॥

अन्वयार्थ : [अरहंतु वि सो सिद्धु फुडु] प्रकट में उसे ही अरिहंत, सिद्ध, [सो आयरिउ वियाणि] उसे ही आचार्य जानो [सो उवझायउ सो जि मुणि] उसे ही उपाध्याय उसे ही मुनि, [णिच्छइँ अप्पा जाणि] निश्चय से इन सबको आत्मा जानो ।
[सो सिउ संकरु विण्हु सो] वही शिव, शंकर वही विष्णु है, [सो रुद्धु वि सो बुद्धु] वही रुद्र है वही बुद्ध है, [सो जिणु ईसरु बंभु सो] वही जिन है, इश्वर, वही ब्रह्मा है, [सो अणंतु सो सिद्धु] वही अनन्त है और वही सिद्ध है ।

परमात्मा अपनी ही देह में स्थित है

एव हि लक्खण-लक्खियउ, जो परु णिक्कलु देउ
देहहँ मज्झहिँ सो वसइ, तासु ण विज्जइ भेउ ॥106॥
इन लक्षणों से विशद लक्षित देव जो निर्देह है
कोई भी अन्तर है नहीं जो देह-देवल में रहे ॥

अन्वयार्थ : [एव हि लक्खण-लक्खियउ] उपर्युक्त विविध नामों से लक्षित [जो परु णिक्कलु देउ] जो परम निष्कल (शरीर रहित) देव है, [देहहँ मज्झहिँ सो वसइ] वह इस शरीर में ही रहता है [तासु ण विज्जइ भेउ] उसमें और इसमें कोई अन्तर नहीं है ।

आत्म-दर्शन ही सिद्ध होने का उपाय

जे सिद्धा जे सिज्झिहिहिँ, जे सिज्झहिँ जिण-उत्तु
अप्पा-दंसणिँ ते वि फुडु, एहउ जाणि णिभंतु ॥107॥
जो होएंगे या हो रहे या सिद्ध अब तक जो हुए
यह बात है निर्भ्रान्त वे सब आत्मदर्शन से हुए ॥

अन्वयार्थ : [जे सिद्धा जे सिज्झिहिहिँ] जो सिद्ध हुए हैं, जो होंगे और [जे सिज्झहिँ जिण-उत्तु] जो वर्तमान में हो रहे हैं, जिनेन्द्र भगवान ने कहा है [अप्पा-दंसणिँ ते वि फुडु] वे सब आत्म-दर्शन से ही हो रहे हैं - [एहउ जाणि णिभंतु] ऐसा निःसन्देह जानो ।

ग्रंथकर्त्ता की अंतिम भावना

संसारहँ भय-भीयएँ, जोगिचंद-मुणिएण
अप्पा-संबोहण कया, दोहा इक्क-मणेण ॥108॥
भवदुखों से भयभीत योगीचन्द्र मुनिवर देव ने
ये एकमन से रचे दोहे स्वयं को संबोधने ॥

अन्वयार्थ : [संसारहँ भय-भीयएँ] संसार से भयभीत (जीवों के लिए) [जोगिचंद-मुणिएण] योगीन्दु मुनि ने [अप्पा-संबोहण] आत्म-सम्बोधन के लिए [दोहा इक्क-मणेण] एकाग्र मन से इन दोहों की रचना [कया] की है ।